

आराधनापताका और वीरभद्र

गत कार्तिकमासके 'जैनहितैषी'में 'ऐतिहासिक जैनव्यक्तियाँ' शीर्षक लेखके अंतर्गत 'वीरभद्र'का उल्लेख करते हुए, 'आराधनापताका'के विषयमें लेखक महाशयने लिखा है कि—
“ एक श्वेताम्बर विद्वान् द्वारा हमको ऐसा माझम हुआ था कि 'आराधनापताका'के कर्ता 'वीरभद्र' दिगम्बराचार्य हैं । ” अस्तु, जिन श्वेताम्बर विद्वद्वर्यने 'वीरभद्र'को दिगम्बराचार्य बताया वह किस आधारसे, इस बातको तो वे ही जान सकते हैं; परन्तु मुझे इस ग्रन्थका साधन्त निरीक्षण करनेसे ऐसा माझम हुआ है कि इसके कर्ता आचार्य श्वेताम्बर ही हैं । अतः मैं इसी विषयके प्रमाणोंको क्रमशः नीचे उद्धृत करता हूँ । आशा है कि पाठक उनपर विचार करेंगे ।

'आराधना-पताका'में १ परिक्रमविधि, २ गणसंकमण, ३ ममत्वव्युच्छेद और ४ समाधि-लाभ, ये द्वार लाभ मुख्य हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थकारने ५१ वीं गाथामें उल्लेख किया है कि—

“ आरहणाविहिं पुण भक्तपरिणाइ वण्णिमो पुव्वं ।

ओसणं स च्चेव उ सेसाण वि वण्णणा होइ ॥ ”

अर्थात्—आराधना—विधिको हमने पहले 'भक्तपरिज्ञा' प्रकीर्णकमें वर्णन किया है, वही विधि सर्वत्र समझनी चाहिये । इससे स्पष्ट माझम होता है कि 'भक्तपरिज्ञा' और प्रकृत ग्रन्थ, (आराधना-पताका) दोनोंके कर्ता महाशय एक ही हैं ।

५४ वीं गाथामें लिखा है कि—

“ भक्तपरिणामरणं भणियं सपरक्कमस्स सवियारं ।

तत्साराहणमिणमो भणंति कमसो चउदारं ॥ ”

अर्थात् — सविचार—भक्तपरिज्ञामरण शक्तिवाले (स्वस्थ शरीरवाले)को होता है । अतः उसकी आराधनाको चार द्वारोंसे कहते हैं ।

‘ भक्तपरिज्ञा ’की दसवीं गाथा इस प्रकार है—

“ अपरक्कमस्स काले अपहुप्पं तंमि जं तमवियारं ।
तमहं भक्तपरिणं जहापरिणं भणिस्सामि ॥ ”

इसमें लिखा है कि अस्वस्थ शरीरवालेको जो परिज्ञा होती है उसे अविचार—भक्तपरिज्ञा कहते हैं । उस अविचार—भक्तपरिज्ञाको मैं यथावस्थित (?) रूपसे कहूँगा ।

मतलब यह हुआ कि, भक्तपरिज्ञा दो प्रकारकी है, एक अविचार और दूसरी सविचार । अविचार—परिज्ञाका वर्णन ‘ भक्तपरिज्ञा ’ ग्रन्थमें और सविचार—परिज्ञाका कथन प्रस्तुत ग्रन्थमें किया गया है । और इससे इन दोनों ग्रन्थोंका पारस्परिक सम्बन्ध भी पाया जाता है ।

परिक्रमविधि — द्वारांतर्गत लिंगद्वारकी ६४ वीं गाथामें लिखा है कि—

“ उवही पुण धेराणं चोदसहा सुतनिदिट्ठो ॥ ”

अर्थात्—स्थविरकल्पियोंके लिये सूत्रमें चौदह प्रकारके उपधिका विधान किया है । यह स्थविरकल्प और चौदह प्रकारके उपाधिका विधान किया है । यह स्थविरकल्प और चौदह प्रकारके उपधिका विधान दिगम्बराचार्यके आराधनाग्रन्थमें नहीं हो सकता ।

‘ आचेलकुहेसिअ ’ आदि जो दश प्रकारका कल्प है उसमेंसे प्रथम ही ‘ आचेलकय (नग्नत्व) ’ कल्पकी जो व्याख्या ग्रन्थकी ७० वीं गाथामें दी है उसका अस्तित्व दिगम्बराचार्यके ग्रन्थमें नहीं बन सकता । वह गाथा इस प्रकार है—

“ जुण्णेहिं खंडिरुहिय असन्वतणुणउरुहिं (१) मइलेहिं ।
चेलेहिं सचेळ च्चिय अचेलगा हुंति मुणिवसभा ॥

१ चौदह प्रकारके उपधिका वर्णन निम्नलिखित गाथाओंमें है

पसं १ पत्ताबंधो २ पायट्ठवणं ३ च पायकेसरिया ४ ।
बड्ढलाइं ५ रयत्ताणं ६ च गोच्छाओं ७ पायनिज्जोगो ॥
तिषेव य पच्छागा १० रयहरणं ११ चैव होइ मुहपत्ती १२ ।
एसो दुवालसविहो उवही जिणकप्पियाणं तु ॥
एए चैव दुवालसमत्तग १३ अइरेग चोलपट्ठो १४ य ।
एसो चउइसविहो उवही पुण धेरकप्पमि ॥

आधिनिर्युक्ति—गाथा ६६८-६९-७०

इसमें लिखा है कि 'जीर्ण खंडित और मलिन वस्त्रोंके धारण करने पर भी साधुलोक अचेलक (नग्न) कहलाते हैं ।

प्रस्तुत 'आराधनापताका' में 'भक्तपरिज्ञा' ग्रन्थकी १७० गाथाओंमेंसे ११४ गाथाएँ ज्यों की त्यों उठाकर रखी गई हैं । अनेक गाथायें पिंडनिर्युक्तिकी, अनेक आवश्यक निर्युक्तिकी, कितनी ही आवश्यककी हरिभद्रीय टीकामें प्रमाण रूपसे दी हुई और कितनी ही आवश्यकान्तर्गत परिष्ठापनिका निर्युक्तिकी, इस प्रकार बहुत-सी गाथाएँ इसमें दूसरे ग्रन्थोंसे संग्रह की गई हैं । अतः इस ग्रन्थको 'संग्रहग्रन्थ' कहना कुछ भी अनुचित न होगा ।

८९४ नम्बरकी गाथामें लिखा है कि—

“एयं पञ्चकखाणं सवियारं वणिणयं सविथारं ।

इत्तो भत्तपरिणं लेसेण भणामि अवियारं ॥”

अर्थात्—यह सविचारप्रत्याख्यान (परिज्ञा) विस्तारपूर्वक कथन किया गया, अब अविचार-परिज्ञाका संक्षेपसे ('भक्तपरिज्ञा' ग्रन्थमें विस्तारसे वर्णन होनेके कारण) करता हूँ । इसके बाद दश गाथाओंमें उसका वर्णन दिया गया है । अंतमें इंगिणी-मरण और पादोपगमनका भी वर्णन संक्षेपसे किया है ।

मैं समझता हूँ, इस सम्पूर्ण कथनसे पाठकोंको इस बातका जरूर निश्चय हो गया होगा कि यह 'आराधनापताका' ग्रन्थ श्वेताम्बराचार्यनिर्मित है, दिगम्बराचार्यकृत नहीं ।

उक्त लेखमें आगे चलकर, लेखक महाशयने यह भी प्रकट किया है कि—“इसके सिवाय जैनग्रन्थावलीमें 'वीरभद्र' नामके दो आचार्योंका और भी उल्लेख किया गया है । एक 'चतुःशरण' नामके श्वेताम्बर ग्रन्थके कर्ता 'वीरभद्रगणि', जिनके विषयमें उक्त ग्रन्थके टीकाकारने लिखा है कि वे महावीर भगवान्के शिष्य थे....”

यद्यपि 'जैन ग्रन्थावली' में 'चतुःशरण'के कर्ता 'वीरभद्रगणि' को टीकाकारके कथनानुसार महावीर परमात्माका शिष्य लिखा है परन्तु 'चतुःशरण', 'भक्तपरिज्ञा' और 'आराधनापताका' के कर्तृनाम-गर्भपद्योंके निरीक्षणसे तीनों ही ग्रन्थोंके कर्ता प्रायः एक ही व्यक्ति जान पड़ते हैं ।

यथा :—

“इय जीवपमाय महारिवीर मदंत मेय मञ्जयणं ।” —चतुःशरण ।

“इय जोईसरज्जिणवीरमणियाणुसारिणी म्णिमा ।” —भक्तपरिज्ञा ।

“इय विसयवइरिज्जिणवीर मद्माराहणं पसाहेसु ।”

“इय सुन्दराई जिणवीरमद्मणियाइं पवयणार्हितो ।” —आराधनापताका ।

चतुःशरणके टीकाकारने चतुःशरणके कर्ता 'वीरभद्रगणि' को जो महावीर भगवान्का शिष्य बतलाया है, वह केवल गतानुगतिक किंवदंती पर अवलम्बित है, जो अभीतक चतुःशरण, भक्तपरिज्ञा आदिके बारेमें बद्दस्तूर चली आती है। इससे अधिक 'वीरभद्र' संबंधी विशेष हाल माद्धम नहीं हुआ। वीरभद्रके इस 'आराधनापताका' ग्रन्थ और उपलब्ध हुआ और उसको दो कापियाँ मिलीं। अतः पाठकोके परिज्ञानार्थ यहाँ उसका भी कुछ परिचय दे दिया जाता है —

यह दूसरा 'आराधनापताका' ग्रन्थ प्राकृत, कर्ताके नामसे विरहित, द्वात्रिंशद्द्वारात्मक और गाथा प्रमाण ९९३ को लिये हुए है। इसके मंगलाचरणकी और अंत्यकी गाथायें क्रमशः ये हैं —

“पणमिरन मिरनरिदंबंदियं वंदिउं महावीरं । भीमभवन्नवगहणं पजंताराहणं एयं ॥१॥

बत्तीसा दारेहिं भणिहिइ खवगस्स उत्तमट्टविही । ”

“आराहणापडायं एयं जो सम्ममायरइ धत्तो ।

सो लहइ सुद्धसद्धो तिलोयचंदुज्जलं किट्ति ॥ ९३० ॥ ”

यह ग्रन्थ भी श्वेताम्बरीय है; क्यों कि इसके सुकृतानुमोदन द्वारमें ३७७ वीं गाथा इस प्रकार है —

“कालि य सुयस्स गुणणं अंगाणंग-सुयजोगवहणं जं ।

अणहिय-अहीणकरणं पडिलेहावस्सयाईणं ॥ ”

अर्थात् — काल (जिस वक्त कालिकादि श्रुत पढ़नेका समय बताया है वह) में श्रुतका अध्ययन किया हो, अंगश्रुत (द्वादशांग) अनंगश्रुत (उपांगादि) का योगवहन (विधानविशेष) किया हो, और प्रतिलेखना आवश्यकतादिक यथावस्थित किया हो उसका अनुमोदन करता हूँ ।

इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भी दिगम्बराचार्य विरचित नहीं; क्यों कि द्वादशांगी और उपांगश्रुत दिगम्बराचार्यसंमत न होनेसे उनके यहाँ इनका योगवहन 'शशशृंग' समान है ।

यह 'आराधना-पताका' ग्रन्थ तेरहवीं शताब्दीके अनन्तरका है; क्यों कि इसमें 'आशातना-दोष-प्रतिक्रमण' द्वारान्तर्गत गुरुकी तेतीस आशातना संबंधी "पुरओ पक्खासन्ने" आदि तीन गाथाएँ 'देवेन्द्रसूरि' कृत 'गुरुवंदनभाष्य'की हैं; और ये देवेन्द्रसूरि तेरहवीं शताब्दीमें हुए हैं ।

अंतमें 'आराधना-पताका'की पुस्तके इकट्ठी कर देने वाले मुनिवर्य श्री जसविजयजीका उपकार मानता हुआ मैं इस लेखको यहीं समाप्त करता हूँ ।

['जैन हितैषी,' दिसम्बर, ई. स. १९१९]